

## ब्लॉग्स, गूगल और विज्ञान

भौतिक शास्त्री जॉन आर्किबाल्ड व्हीलर ने कभी कहा था, 'विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी केवल इसलिए होते हैं ताकि वे प्रोफेसरो को शिक्षित कर सकें।' उनके विद्यार्थियों में जाने-माने भौतिक शास्त्री रिचर्ड फाइनमैन भी शामिल थे। मैं भी लंबे समय तक प्रोफेसर रहा हूँ और इस दौरान विद्यार्थियों की कई पीढ़ियों से शिक्षित होने का मुझे मौका मिला है। विद्यार्थियों का हर समूह बदलते समय को प्रतिबिंबित करता है। अपने किसी मेंटर के साथ वर्षों काम करने के बाद जब शोधार्थी उसे छोड़कर जाता है तो मिली-जुली भावना सामने आती है। निस्संदेह दोनों ही पक्षों को पीएच.डी. की जंग जीतने की राहत का एहसास होता है।

कृतज्ञ विद्यार्थियों द्वारा दिए गए उपहार मेंटर्स के लिए खजाने से कम नहीं होते। मैंने भी ऐसे कई उपहार हासिल किए। करीने से लपेटे हुए मिठाइयों के डिब्बे खुशी और ताकत दोनों देते हैं। बढ़ती उम्र के साथ हाल के वर्षों में मुझे एहसास हुआ है कि विद्यार्थी (और सहयोगी भी) अब मुझे किताबें देने लगे हैं जो इस बात का संकेत होता है कि मस्तिष्क को भी पोषण की ज़रूरत है। जो किताबें उपहार में मिलती हैं, उनसे समयकाल भी साफ-साफ झलकता है। हाल के दिनों में मुझे जो किताबें तोहफे में मिली हैं, वे इस बात की याद दिलाती हैं कि हम सूचना के युग में जी रहे हैं और वर्ल्डवाइड वेब तथा इंटरनेट से घिरे हुए हैं। मेरे एक विद्यार्थी ने मुझे जो किताब दी, वह गूगल के असाधारण विकास का वर्णन करती है (*द गूगल स्टोरी*, डेविड ए. वाइस, पैन बुक्स, लंदन 2005)। पिछले कुछ सालों के दौरान गूगल के 'लोगो' से हज़ारों बार रूबरू होने और इसके संस्थापकों सर्गेई ब्राइन व लैरी पेज के बारे में परीकथाओं जैसी कहानियां पढ़ने के बाद मुझे नहीं लगा कि इसमें कुछ और पढ़ने लायक होगा। इसलिए मैंने इसे कोने में पटक दिया। कुछ दिन पहले ही मुझसे विदा हो रही एक छात्रा ने मुझे एक किताब दी जिसका शीर्षक बहुत ही आकर्षक था - 'ब्लॉग!' यह किताब भेंट करते हुए

मेरी इस छात्रा ने मुझसे कहा कि अब मुझे भी ब्लॉग सीख लेना चाहिए। उसका संदेश बहुत ही सरल और साफ था - छात्रा अपने प्रोफेसर को सिखाने का प्रयास कर रही थी। उसका मानना था कि जो भी व्यक्ति आम पाठकों के लिए लिखना चाहता है, उसे ब्लॉग लिखने की ही सलाह दी जाएगी। ऐसा व्यक्ति इंटरनेट पर एक वेबसाइट से दूसरी वेबसाइट पर जाने वाले अधिक से अधिक लोगों का ध्यान अपने लेखन की ओर खींच सकेगा। लैपटॉप, पामटॉप और स्मार्ट फोन ने ऐसे लोगों के लिए राह आसान कर दी है जो बिना रुके साइबरस्पेस पर अपनी उंगलियों की कसरत करने के आदी हो चुके हैं। यह किताब दावा करती है कि "कैसे यह नवीनतम मीडिया-क्रांति राजनीति, व्यवसाय और संस्कृति को बदल रही है।" (*ब्लॉग!*, डेविड क्लाइन एवं डैन बर्स्टिन, सीडीएस बुक्स, न्यूयॉर्क, 2005)। मैंने इस किताब पर बस सरसरी नज़र ही डाली है, लेकिन यह साफ है कि 'ऑनलाइन दुनिया' में विगत छह सालों के दौरान काफी बदलाव आया है। फेसबुक, ट्विटर और यूट्यूब शब्द अक्सर सुनाई देते हैं। मुझे पता चला कि वर्ष 2004 में 'ब्लॉग' शब्द यूएस डिक्शनरी शब्दों में शीर्ष पर था। इससे मैंने स्वयं को बहुत पुरातन महसूस किया क्योंकि मैंने तीन साल पहले ही कुछ वेबसाइटों पर जाना शुरू किया था। 'ब्लॉग!' के शुरुआती पन्ने पढ़ने पर मुझे याद आया कि चार्ल्स डॉजसन (लुइस कैरॉल फेम) ने कहा था कि आदमी वह पशु है जो पत्र लिखता है। क्लाइन और बर्स्टिन ऐसी अनेक विशेषताएं गिनाते हैं जो हमें मनुष्य का दर्जा देती हैं। वे लिखते हैं, "मनुष्य की एक और ऐसी विशेषता है जो उसे अनूठा बनाती है: हम ब्लॉगिंग कर सकते हैं।" ब्लॉग्स और नए सामाजिक मीडिया वैश्विक संप्रेषण को बदल रहे हैं। वे

न केवल राजनीति और संस्कृति, बल्कि विज्ञान एवं विज्ञान पत्रिकाओं को भी इस तरह से प्रभावित कर रहे हैं कि वरिष्ठ नागरिकों का चौंकना स्वाभाविक है।

गूगल के संक्षिप्त एवं असाधारण इतिहास पर लिखी



इस किताब की शुरुआत इस घोषणा के साथ होती है - “गटेनबर्ग द्वारा 500 साल पहले आधुनिक प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार करने के बाद आम लोगों को किताबें और वैज्ञानिक ग्रंथ उपलब्ध हो सके, लेकिन सूचनाओं तक लोगों की व्यापक पहुंच बनाने में गूगल ने जो काम किया है, उतना अन्य कोई नहीं कर सका है।”

मजेदार बात यह है कि ‘ब्लॉग’ और ‘गूगल’ दोनों ही शब्द 1997 में प्रकट हुए थे और दोनों का ही इस्तेमाल संज्ञा और क्रिया दोनों रूप में होता है। आज कल्पना करना भी मुश्किल है कि हमारी ज़िंदगी में गूगल के पदार्पण से पहले सूचनाओं को किस तरह से टटोला जाता था। धूलभरी पत्रिकाओं व किताबों के ढेर और मोटे-मोटे व भारी-भरकम ग्रंथों में से सूचनाओं की तलाश अतीत की बात बनती जा रही है। नई पीढ़ी के लिए तो छपी हुई पत्रिकाएं उतनी ही बेगानी हैं, जितने कि डायनासौर।

कुछ का मानना है कि इंटरनेट पर खोजने के लिए थोड़ा कौशल, कुछ धैर्य और पूर्वज्ञान का होना ज़रूरी है, खासकर तब जब आप विज्ञान से सम्बंधित साहित्य के सागर में गोते लगा रहे हों। गूगल में कुछ गलत कीवर्ड टाइप कर देने से इतनी ढेर सारी अप्रासंगिक जानकारी जा जाएगी कि आपकी तलाश ही पूरी नहीं हो पाएगी। अनुभवी लोगों के लिए तो गूगल ऐसा हथियार है, जिससे सूचनाओं तक आसानी से पहुंचा जा सकता है। वैसे ‘गूगलिंग’ (गूगल पर सूचनाएं तलाश करना) भी अन्य कई लतों की तरह मन बहलाव का साधन बन सकती है और अन्य व्यसनों की तरह इसके व्यसनी को भी इसकी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

वर्ष 2008 में निकोलस कार ने दी *एटलांटिक* में एक विचारोत्तेजक आलेख में सवाल उठाया था : “क्या गूगल हमें मूर्ख बना रहा है?” इंटरनेट हमारे मस्तिष्क के साथ क्या कर रहा है, इसे लेकर निकोलस कार के विचार बहुत व्यथित करने वाले हैं। वे शुरुआत स्टेनली कुबरिक की फिल्म ‘2001: ए स्पेस ओडेसी’ के एक दृश्य से करते हैं। इसमें सुपर कंप्यूटर *एचएएल* विलाप करते हुए कहता है, “मेरा मस्तिष्क जा रहा है... मैं इसे महसूस कर सकता

हूँ।” यहां तक कि स्मृति के सर्किट्स कट जाने के बाद भी वह यही महसूस करता है। कार लिखते हैं, “पिछले कुछ वर्षों के दौरान यह बोध मुझे हमेशा परेशान करता है कि कोई मेरे दिमाग के साथ खुरपेंच कर रहा है। मेरे तंत्रिका तंत्र सम्बंधी सर्किट्स की फिर से मैपिंग कर रहा है, मेरी स्मृति की दोबारा से प्रोग्रामिंग कर रहा है।” वे कहते हैं कि अब किताबें और लंबे-लंबे आलेख पढ़ना दुरुह हो गया है। वे लिखते हैं, “अब दो या तीन पन्ने पढ़ने के बाद ही मेरा ध्यान कहीं और भटकने लगता है। मैं बेचैन हो उठता हूँ, तारतम्य खो देता हूँ साथ ही कुछ और करने की इच्छा होने लगती है। मैं महसूस करता हूँ कि अपने हठीले दिमाग को ज़बरदस्ती वापस शब्दों की ओर खींच रहा हूँ। गहन अध्ययन कभी स्वाभाविक हुआ करता था, अब उसके लिए भी संघर्ष करना पड़ता है।”

तो क्या इंटरनेट और गूगल ने हमारे मस्तिष्क को नए सिरे से ढालना शुरू कर दिया है? क्या हमारे मस्तिष्क के लचीलेपन, जिसकी चर्चा अक्सर मस्तिष्क वैज्ञानिक करते हैं, ने हमारे दिमाग को इस तरह से बना दिया है कि वह सभी तरह की नई और व्यापक प्रौद्योगिकियों के प्रति प्रतिक्रिया दिखाने लगा है? वह भी इस तरह से कि जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की गई थी। *साइंस* में हाल ही में ऑनलाइन प्रकाशित एक अध्ययन कहता है कि हम जिस तरह से सूचनाओं के साथ व्यवहार करते हैं, वह इस बात का प्रमाण है कि नए युग की छाप पड़नी शुरू हो गई है। एक रिपोर्ट ‘याददाश्त पर गूगल का प्रभाव: उंगलियों पर सूचनाएं होने के संज्ञानात्मक परिणाम’ में बेट्सी स्पैरो, जेनी लियु और डेनियल वेगनर कहते हैं कि यह बोध कि सूचनाएं कभी भी हासिल की जा सकती हैं, वास्तव में सूचनाओं को याद रखने की क्षमता को प्रभावित कर रहा है।

कुछ लोगों का कहना है कि स्पैरो और अन्य द्वारा किया गया यह अध्ययन दरअसल ‘ट्रांज़ैक्टिव मेमोरी’ की पुरानी अवधारणा पर आधारित है। यह शब्द कुछ लोगों के एक समूह की उस क्षमता को दर्शाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था, जिसमें वे कुछ निश्चित प्रकार की साझा सूचनाओं को याद करने के परिश्रम का बंटवारा कर लेते

थे। स्पैरो और अन्य ने बहुत ही होशियारी से परीक्षण सेट तैयार किए। इनका इस्तेमाल विद्यार्थियों के एक विशाल समूह की यह योग्यता जांचने के लिए किया गया कि वे सूचनाओं को कितना याद रख पाते हैं। उन्हें याद रखने की बजाय गूगल पर सर्च करने की भी छूट थी। इसमें परीक्षण के चार सेट का प्रयोग किया गया था। इसके नतीजों से पता चलता है कि जब लोगों का सामना कठिन सवालों से हुआ तो वे कंप्यूटरों के बारे में सोचने लगे। जब लोगों को लगा कि उन्हें भविष्य में सूचनाओं की ज़रूरत हो सकती है तो उन्होंने सूचनाओं को याद रखने की बजाय यह याद रखने पर ज़ोर दिया कि वे कहां से हासिल की जा सकती हैं। स्पैरो व साथी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इंटरनेट और सर्च इंजिन दोनों प्राथमिक ट्रांज़ैक्टिव मेमोरी के स्रोत हो गए हैं। उनका यह भी आकलन था कि हम और हमारे कंप्यूटर सहजीवी बनते जा रहे हैं और हम दोनों इस तरह की व्यवस्था में ढलते जा रहे हैं जहां सूचनाओं को याद रखने की बजाय यह याद रखा जाता है कि सूचनाएं कहां मिल सकती हैं।

अगर गूगल हमें और अधिक भुलक्कड़ बना रहा है तो क्या ब्लॉग्स विज्ञान की चर्चाओं के तरीकों को प्रभावित कर रहे हैं? क्लाइन एवं बस्टिन की इस किताब में विज्ञान का कोई उल्लेख नहीं है। कुछ साल पहले ही विज्ञान की पत्रिकाओं ने ब्लॉग्स पर नज़र रखना शुरू कर दिया था। एक सर्वे में 4 करोड़ 67 लाख ब्लॉग्स की छानबीन की गई थी। इन्हें उसी तरह से रैंक दी गई थी, जिस तरह से सर्च इंजिन देता है। इसमें शीर्ष 3500 ब्लॉग्स में केवल पांच ब्लाग ही विज्ञान के बारे में थे। विज्ञान का जो शीर्ष ब्लॉग था, वह 179वें स्थान पर था। इस ब्लॉग फैरिंगुला को एक जीव विज्ञानी संचालित करते थे। इसकी शैली अन्य ब्लॉग्स और ब्लॉगर्स दोनों से हटकर थी। अन्य चार ब्लॉग सूची में काफी पीछे थे। यह इस बात का प्रमाण है कि साइबर दुनिया में विज्ञान को लेकर आकर्षण बहुत सीमित है।

‘आर्सेनिक खाने वाले बैक्टीरिया’ प्रकरण के माध्यम से विज्ञान के फैलाव में ब्लॉग्स की नई साहसी दुनिया के प्रवेश को देखा जा सकता है। इस प्रकरण ने नासा की प्रेस वार्ता

में भरपूर ध्यान खींचा, और साथ में साइंस में सम्बंधित शोध-पत्र ऑनलाइन हो गया। कुछ ही दिनों के भीतर एक ब्लॉग पर एक टिप्पणी में इस खोज पर संशय जताया गया। फिर क्या था, इससे आलोचनात्मक विश्लेषण की झड़ी लग गई।

प्रिंट मीडिया में यह शोध-पत्र देर से आया। उसके साथ कम से कम आठ तकनीकी टिप्पणियां भी प्रकाशित की गई थीं। इनमें सभी में शोध-पत्र के उस प्रमुख आधार वाक्य पर संदेह जताया गया था कि बैक्टीरिया फॉस्फोरस की तुलना में आर्सेनिक के साथ कहीं अधिक अनुकूल हो सकता है। यह संदेह इसलिए जताया गया था, क्योंकि फॉस्फोरस जीवन का केंद्रीय तत्त्व होता है। साइंटिफिक अमेरिकन साइट पर दो ब्लॉग इस पूरे प्रकरण को समेटते हैं। रोज़ी रेडफील्ड ने जो पोस्ट लिखा है, उसमें मूल शोध-पत्र के खिलाफ बने ज़बरदस्त माहौल का विवरण है। मैरी-क्लेरी शनहान लिखती हैं, “लगता है, वैज्ञानिक समालोचना ब्लॉग्स, ट्विटर और ऑनलाइन समाचारों की सार्वजनिक दुनिया की ओर बढ़ रही है।

विद्यार्थियों के लिए यह ज़रूरी होगा कि वे भावी नागरिक होने के नाते इस मीडिया का समझदारी से इस्तेमाल करने के योग्य बनें। मुझे तो लगता है कि यह आज के प्रोफेसरों के लिए भी ज़रूरी है कि वे विज्ञान संप्रेषण के तेज़ी से बदलते चेहरे को लेकर थोड़ी-बहुत समझ विकसित करें।

कंप्यूटर और इंटरनेट के गहन प्रभाव के मद्देनज़र में एक बार फिर निकोलस कार के निबंध पर आता हूँ जो निराशा का एहसास करवाता है। वे 2001 की दुनिया की ओर लौटते हैं, जहां लोग इतने मशीनी बन गए हैं कि अधिकांश पात्र मशीन जैसे ही नज़र आते हैं। कार की मानें तो कुबरिक की फिल्म भविष्य का निराशाजनक संदेश देती है, “जब हम दुनिया की अपनी समझ विकसित करने के लिए कंप्यूटरों पर निर्भर रहने लगते हैं तो हमारी बुद्धि कृत्रिम बुद्धि के समान हो जाती है।” अगर कंप्यूटरों की बढ़ती ताकत सामूहिक संज्ञानात्मक पतन को जन्म देती है तो यह प्रौद्योगिकी युग की एक बड़ी विडंबना होगी। (स्रोत फीचर्स)